हिन्दी उपन्यासों में आध्यात्मिक चेतना

रेनू चौधरी[1]*

[1]शोध छात्रा, किशोरी रमण महाविद्यालय, मथुरा

*Corresponding Author: रेनू चौधरी, शोध छात्रा, किशोरी रमण महाविद्यालय, मथुरा

सृष्टि के सभी प्राणियों में मानव योनी ही एक मात्र ऐसी है जिसने अपनी आदिम अवस्था से वर्तमान अवस्था तक निरन्तर प्रगति की है। उसकी प्रगति जितनी बाह्य रही है उतनी आन्तरिक भी रही है। भौतिक जगत के साथ–साथ उसका एक आध्यात्मिक जगत भी रहा है। जितना प्रयत्न उसका भौतिक उपलब्धियों का है उतना ही प्रयत्न मानव मन के आन्तरिक जगत को जानने–समझने और उसके उन्नयन का भी रहा है। विश्व के सन्दर्भ में यह प्रयत्न कहीं अधिक है तो कहीं न्यून है, लेकिन यह सच है कि जहाँ यह मनुष्य है वहाँ यह सोच भी है हम कौन हैं? हम क्या हैं? हम कहाँ से आये हैं? और हम कहाँ जायेंगे? यह सोच ही अध्यात्म की आधार भूमि है।

भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि वो प्रारम्भ से ही जीव जगत, ब्रह्म, माया की धारणा और मान्यताओं को स्वीकार करते हुए, अपने जीवन की संरचना करता रहा। यही कारण है कि भारत और भारतीय समाज को विश्व का आध्यात्मिक गुरू माना जाता है।

अध्यात्म जगत में प्रवेश का मतलब है– निस्वार्थी होना। क्योंकि स्वार्थ ही समस्त पापों का प्रारम्भिक चरण है। आध्यात्मिक होने का अर्थ तीर्थाटन करना या पूजा करने से नहीं है। यह तो अपने इष्ट के प्रति, जगत की परमसत्ता के प्रति मानसिक समर्पण है। जो अज्ञेय होकर भी ज्ञेय हो सकता है, जो विलुप्त होकर भी व्याप्त है, जो सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, सत्य है, शाश्वत है। **"इस अशाश्वत जगत में उस शाश्वत को, जो जानता है, इस अचेतन संसार में उस चिन्मय प्रभु को जो पहचानता है, जो अनेकता में एकमेवा द्वितीय को समझता है, और उसका अपनी आत्मा में दर्शन करता है, वही शाश्वत शान्ति का अधिकारी होता है, न चन्द्रमा न तारे चमकते हैं और न बिजली ही लपकती है फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या? उसी के प्रकाशित होने से प्रत्येक वस्तु प्रकाशित होती है। उसी के प्रकाश से प्रत्येक वस्तु प्रकाशमान है। जब हृदय को दुःख देने वाली समस्त वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है। और यही जीवित रहते हुए ही ब्रह्म–पद प्राप्त कर लेता है।"**[1] इसका नाम ही अध्यात्म है। इस चराचर ब्रह्माण्ड में जो व्याप्त है और जो सब कुछ है, उस सब कुछ के लिए अपनी चेतना, चिन्तन, चेष्टा को जाग्रत और प्रवाहित रखना ही अध्यात्म है। जो चिरपुरातन और चिरनवीन है। इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन और आत्मा की कार्यप्रणालियों के नियंता से साक्षात्कार ही अध्यात्म का विषय रहा है। जीव, जगत और जगद्पिता में एकत्व भाव का दर्शन करना अर्थात् स्वस्वरूपोलब्धि कराकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक होना आध्यात्मिक होना है।

आत्मोत्सर्ग, त्याग, एकाग्रनिष्ठा, संयम, अनुशासन, इन्द्रिय–दम, शम, उपरति, तितिक्षा, मुमुक्षुत्व के सोपानों पर आरूढ़ होकर ही सच्चिदानन्द रूप की प्राप्ति सम्भव है। चेतना या मनस का नित्य परिमार्जन करना, उसे कृत्रिमता और विक्षेपों से बचाना ही आध्यात्मिक जीवन की कसौटी है। मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र होकर उत्कृष्टता का वरण करना अध्यात्म है। दृश्य जगत की सीमाओं से परेय परब्रह्म की सत्ता दर्शन, लौकिक और पारलौकिक जगत के संचालन की अलौकिक व्यवस्था का दर्शन तथा मैं और मैं में अधिष्ठित परमसत्य का दर्शन करना ही अध्यात्म का विषय क्षेत्र है। उसके प्रति चैतन्य होना, उसकी चेतना से दीप्तिमान होना ही आध्यात्मिक चेतना है।

साहित्य में मानव मन प्रतिध्वनित होता है और समाज प्रतिच्छायित होता है। साहित्य की यह विशेषता ही उसकी सार्थकता और उपयोगिता सिद्ध करती है। साहित्य की विधा चाहे जो भी हो, उसमें व्यक्ति अवश्य होगा, व्यक्ति का मन होगा। समाज होगा, समाज का जीवन होगा और जो कुछ होगा वो व्यक्ति और समाज के लिए ही होगा। आधुनिक काल में उपन्यास विधा का जन्म एक क्रान्तिकारी चरण तो है ही साथ ही साथ समाज को समझाने का, जानने का, उसके विविध रंग को देखने का सबसे बड़ा फलक भी है। आधुनिक काल के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें जीवन से सम्बद्धता का, अंतरंगता का, आन्तरिकता का सीधा जुड़ाव है। ये सीधा जुड़ाव कहीं सबसे अधिक दिखाई पड़ता है तो वो है हिन्दी साहित्य की सशक्त विधा 'उपन्यास'।

अध्यात्म भारतीय समाज के मन का सबसे गहरा रंग है जिससे वह जीवन की दिशा–दृष्टि प्राप्त करता है और वही जीवन को जीने का रंग–ढंग और रस देता है। चूँकि उपन्यास जीवन की छाया है तो स्वाभाविक है, जीवन का ये रंग उसमें अवश्य झलकेगा। कहीं प्रेरणा बनेगा, कहीं प्रसाद बनेगा। कहीं जीवन को उत्प्रेरित भी

Access this article online

Quick Response Code:

www.oijms.org.in

करेगा और आनन्दित भी। जीवन से उसका नाता ऐसा है जैसे पुष्प का डाली से, कमल का जल से और प्राण का शरीर से।

हिन्दी उपन्यासों की एक लम्बी यात्रा है। यह यात्रा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर अथक अनवरत चल रही है। सौ वर्ष से अधिक की इस यात्रा के विभिन्न पड़ाव हैं और इसका हर एक पड़ाव अपने आप में 'मील का पत्थर' है। समाज परिवर्तनशील है और इस परिवर्तन के साथ साहित्य का परिवर्तन होना भी स्वाभाविक है। हिन्दी उपन्यासों की इस यात्रा में 'अध्यात्म' भी उसका सहचर रहा है। यह साहचर्य कहीं अधिक गहराई से व्यक्त होता है तो कहीं अपने सम्बन्ध की झलकियाँ छोड़ता है, लेकिन साथ नहीं छोड़ता। क्योंकि अध्यात्म का भारतीय समाज से कभी सम्बन्ध टूटा ही नहीं है। वह भारतीय मानव समाज की चिन्तन और चेतना रहा है। यह सम्बन्ध परिस्थिति–जन्य कारणों से कभी अपनी प्रखरता व्याप्त और व्यक्त करता है तो कभी काल बादलों में घिरने पर भी अपनी आभा का आभास कराने से नहीं चूकता।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आधुनिक हिन्दी साहित्य की यात्रा प्रारम्भ होती है और यहीं से उपन्यास विधा आकार ग्रहण करती है। इस उपन्यास विधा को हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इसकी विशेषताओं के आधार पर मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया।

1ण प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास
2ण प्रेमचन्द युगीन उपन्यास
3ण प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास
4ण स्वातंत्र्योतर उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों की लगभग 130 वर्षीय विकास यात्रा में उपन्यासों ने समाज को सोचने का एक नया नजरिया प्रदान किया है। जीवन के अनेक संघर्षों को व्यक्त करता हुआ उपन्यास मानवता के उत्कर्ष के लिए प्रेरणा बना है तो कहीं समाधान के द्वार भी खुले हैं। प्रत्येक कालखण्ड अपने समय की कुछ समस्याओं से जूझता रहा है वही चुनौतियों और उनके तत्कालीन परिणाम उपन्यासों की विषयवस्तु बनती रही हैं। बहुत अधिक न सही किन्तु अध्यात्म के सहारे उपन्यासों ने समाज को नैतिक बल प्रदान करने की सफल चेष्टा की है। अस्पृश्यता के विरूद्ध, आडम्बर और पाखण्ड के विरूद्ध चैतन्य दृष्टि के साथ निहारा है और आवाज उठायी है। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टियुक्त समाज का अभ्युदय हुआ। आज आस्था को नया कलेवर मिला है, रूढ़ियों का खण्डन होने लगा मान्यतायें बदलने लगीं। समाज की पहले से अधिक दृष्टि व्यापक हुयी है। एक बार फिर सच्चे अर्थों में अध्यात्म को जीवित होने का अवसर मिला है।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास

जहाँ तक प्रारम्भिक उपन्यासकारों से सम्बन्ध है उनका अध्यात्म दर्शन बहुत कुछ स्थूल और जीवन के व्यावहारिक पहलू से अधिक सम्बन्धित है। इन लेखकों में अपनी संस्कृति तथा अपनी जाति के प्रति सम्मान भावना है। इस युग के अधिकांश लेखक सनातन धर्मी हैं। अतः उनके उपन्यासों में परम्परित हिन्दू दर्शन का स्वरूप देखा जा सकता है। ये सारे लेखक जीवन के सम्बन्ध में किसी अभिनव दर्शन की स्थापना तो नहीं करते, लेकिन इतना अवश्य है कि प्राचीन तथा परम्परानुमोदित जीवन–दर्शन को अधिक विश्वसनीयता के साथ अपनी रचनाओं में उतारते हैं। प्रारम्भिक उपन्यासों का स्वर इसीलिए सबसे अधिक उपदेशक और समाज–सुधारक का स्वर बना हुआ है।

लाला श्रीनिवासदास अपने उपन्यास 'परीक्षा–गुरू' में लिखते हैं कि **''ईश्वर को सब सामर्थ्य है।''**[2] वह कहते हैं कि ईश्वर ही सर्वसामर्थ्यवान है। वह ही सबसे बड़ा दानदाता है। **''ईश्वर की कृपा से किसी को कोई वस्तु मिलती है तो उसके साथ ही उसके लायक बृद्धि भी मिल जाती है या ईश्वर की कृपा से किसी कायम मुकाम (प्रतिनिधि) वगैरे की सहायता पाकर उस्के ठीक, ठीक काम चलने का बानक बन जाता है जिस्सै वह नियम निभे जाते हैं परन्तु ईश्वर के नियम मनुष्य सै किसी तरह नहीं टूट सक्ते।''**[3]

ईश्वर की माया को तो सिर्फ ईश्वर ही जान सकता है। उसे मनुष्य न ही कभी जान सका और न ही कभी जान पायेगा **''यद्यपि ईश्वर के ऐसे बहुत सै कामों की पूरी थाह मनुष्य की तुच्छ बुद्धि को नहीं मिली तथापि उसनें मनुष्य को बुद्धि दी है. इसलिए यथा शक्ति उस्के नियमों का विचार करना, उन्के अनुसार बरतना और बिपरीत भाव का कारण ढूँढना उस्को उचित है।''**[4] प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास अध्यात्म की बात तो करते हैं किन्तु उनके मूल में जनमानस के रंजन का उद्देश्य प्रथम रहा है। प्रायः इस काल खण्ड में अध्यात्म की स्थिति गौढ़ ही रही है।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यास

प्रेमचंद युग से पूर्व कथा साहित्य जासूसी एवं तिल्स्मी दुनियां में खोयो हुआ था। प्रेमचंद युग 1918 से 1956 तक रहा। प्रेमचंद युग में प्रवेश करता हुआ हिन्दी कथा साहित्य अनेक परिवर्तनों के साथ क्रान्तिकारी युग में प्रवेश करता है। युग चाहे कोई भी हो किन्तु यह परम सत्य है कि उस युग को चलाने वाला कोई कर्ता या परमसत्ता अवश्य है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' में कुमारगिरि विशाल देव को अपना शिष्य बनाने से पहले उसके समक्ष दो शर्त रखते हैं। वे कहते हैं कि ''**मैं आस्तिक हूँ। इसके पहले कि तुम मुझसे कुछ सीख सको, तुम्हें दो बातों को मानना पड़ेगा। प्रथम यह**

Online international Journal of Medical and Social Sciences 2016, Vol.2, Issue 2
ISSN: 2454-2385 (Online Version)

कि ब्रह्म है और दूसरा यह कि कर्त्तव्य जीवन का प्रधान अंग है।"[5] अतः कुमारगिरि यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस सम्पूर्ण सृष्टि के ऊपर एक सत्ता है जिसे ब्रह्म कहते हैं और ब्रह्म है और अवश्य है।

इस उपन्यास की पात्र चित्रलेखा कुमारगिरि के ब्रह्म प्राप्ति के लिए किये गये ध्यान को अकर्मण्यता कहती है। वह कहती है कि यह ब्रह्म, ज्ञान, ध्यान तथा यह शून्य सब अकर्मण्यता के ही रूप हैं। इस पर कुमारगिरि चित्रलेखा से कहते हैं – **"जिसे सारा विश्व अकर्मण्यता कहता है, वह वास्तव में अकर्मण्यता नहीं है, क्योंकि उस स्थिति में मस्तिष्क कार्य किया करता है। अकर्मण्यता के अर्थ होते हैं– जिस शून्य से उत्पन्न हुए हैं, उसी में लय हो जाना और वही शून्य जीवन का निर्धारित लक्ष्य है।"**[6] कुमारगिरि ब्रह्म को भी शून्य ही मानते हैं क्योंकि ब्रह्म से ही हमारी उत्पत्ति होती है और अन्त में उसी में हम लय हो जाते है।

वहीं चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'हृदय की परख' की नायिका सरला अपने बूढ़े बाबा से कहती है कि बाबा, **"क्या जड़, क्या चैतन्य, सब का उद्गम एक ही है। एक से ही सबका विकास है, और अंत में वहीं सबका सम्मिलन होता है।"**[7]

'चित्रलेखा' उपन्यास का कुमारगिरी ईश्वर में आस्था रखता है। वह कहता है कि हम सबकी उत्पत्ति और अन्त करने वाला ईश्वर ही है। उसी से हमारी उत्पत्ति हुई है और उसी में हम लय हो जाते हैं परन्तु चाणक्य परिवर्तनशील विचारधारा का व्यक्ति है। वह ईश्वर के इस स्वरूप को समाज निर्मित तथा व्यक्ति निर्मित मानता है। वह कहता है कि हम जैसे ईश्वर को देखना चाहता हैं वह हमें वैसा ही दिखता है। कुमारगिरि कहता है कि **"ईश्वर अनादि है।"**[8] इस बात पर चाणक्य अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहता है कि **"ठीक कहते हो योगी, ईश्वर अनादि है। यह बात नई नहीं है, प्रत्येक मनुष्य कहता है कि ईश्वर अनादि है, पर क्या तुम ईश्वर को जानते हो? क्या यहाँ पर बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति ईश्वर को जानता है?"**[9] इतना कहते ही चाणक्य के नेत्रों में ज्योति भर आती है वह ईश्वर के वास्तविक रूप का परिचय देते हुए कहता है– **"हाँ, ईश्वर अनादि है, पर उस ईश्वर को मैं दावे के साथ कहता हूँ, कोई नहीं जानता, वह कल्पना से परे है। वह सत्य है, पर इतना प्रकाशवान कि मनुष्य के नेत्र उसके आगे नहीं खुले रह सकते।"**[10] प्रेमचन्द युगीन उपन्यास आडम्बर व पाखण्डों पर करारा प्रहार करते नजर आते हैं। इस समयावधि में आध्यात्मिकता नैतिकता के साथ समाज के उन्नयन की दिशा में प्रयास करती हुयी नजर आती है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास

अध्यात्म के स्वरूप पर विचार करते हुए मनीषियों ने तीन बिन्दुओं को आधार बनाया– आत्मा, परमात्मा, विश्व प्रकृति (माया या प्रकृति)। आत्मा सत्य है, परमात्मा सत्य है, प्रकृति सत्य है। यह अध्यात्म का सर्वमान्य सत्य है। अध्यात्म को स्वीकार करने वाला व्यक्ति इसे पहले स्वीकार करता है। आत्मा का परमात्मा से या प्रकृति से कहीं न कहीं किसी प्रकार के अन्तर्सम्बन्ध को स्वीकार करना अध्यात्म की पहली शर्त है। ब्रह्म की सत्यता और ब्रह्म की सत्ता अध्यात्म का आधारभूत है। इसके बिना हम आध्यात्मिक स्वरूप को नहीं समझ सकते। वेदान्त दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, आधुनिक क्रान्तिकारी विचारक स्वामी विवेकानन्द के शब्दो में **"ब्रह्म सत्यं, अर्थात् ब्रह्म सत्य है ब्रह्म वह नित्य अनन्त तत्व है जिसमें सबकुछ स्थित है और जिसमें सबका विलय हो जाता है।"**[11]

अध्यात्म में भगवद् प्राप्ति जीवन का लक्ष्य माना गया है जिसे हम परम सत्ता की अनुभूति, परमानन्द की प्राप्ति, परमपुरुष की प्राप्ति, कोई भी नाम दे सकते हैं किन्तु अभिप्राय यह है कि वह परमसत्ता है वही सूत्रधार है। वह सूत्रधार ही अलग अलग नामों से सम्बोधित होता है।

चेतना या मानस का नित्य परिमार्जन करना, उसे कृत्रिमता और विक्षेपों से बचाना ही आध्यात्मिक जीवन की कसौटी है। मनसा, वाचा से पवित्र होकर उत्कृष्टता का वरण करना अध्यात्म है। दृश्य जगत की सीमाओं से परे परब्रह्म की सत्ता–दर्शन, लौकिक और पारलौकिक जगत के संचालन की अलौकिक व्यवस्था का दर्शन करना तथा मैं में अधिष्ठित परमसत्य का दर्शन करना ही अध्यात्म का विषय क्षेत्र है। उसके प्रति चैतन्य होना उसकी चेतना से दीप्तिमान होना ही आध्यात्मिक चेतना है। मन के उन्नयन तथा सर्वजन हिताय की भावना हिन्दी उपन्यासों में अध्यात्म को विषय बनाकर बढ़ी है। मानव मन का परिमार्जन, सृष्टि संरचना के प्रति जिज्ञासा, मानव जीवन का कल्याण और मानवता की स्थापना उसके प्रयोजन रहे हैं।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में परमसत्ता को अपने–अपने ढंग से व्यक्त किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के चतुर्थ उच्छ्वास में आचार्य सुगतभद्र अपने एक शिष्य को अध्यात्म ज्ञान से परिचित कराते हैं। वे अपने शिष्य से 'परम तत्व' के विषय में कुछ इस प्रकार वार्तालाप करते हैं कि **"परम तत्व कहने से 'तत्' वस्तु की सत्ता तो माननी पड़ेगी।"**[12] इस उपन्यास के एक पात्र महात्मा बाबा है। वे बाणभट्ट से ब्रह्माण्ड की व्यापकता के सन्दर्भ में कहते हैं कि **"इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अणु देवता है।"**[13] इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास 'सन्यासी' का पात्र बल्देव ईश्वर के अस्तित्व की वास्तविकता बताते हुए नन्द किशोर से कहता है कि **"कोई अज्ञात सर्वव्यापी शक्ति**

सारी प्रकृति के ऊपर राज करती है, और सब प्राणियों के भाग्य का नियन्त्रण करती है।"[14] प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में समाज के लिए एक सम्यक और सृजक दृष्टि का बोध होता है। जिसकी मूल भावना मानव के अन्तरमन में मानवीयता की प्रतिष्ठापना करना रहा है। वस्तुतः समाज को नई दिशा देने का लक्ष्य ही इस अवधि के उपन्यासों में दर्शित हुआ है।

स्वातंत्र्योतर उपन्यास

परमात्मा, जीव, आत्मा, सृष्टि, जगत, माया, मोह, ज्ञान सम्बन्धी अनेक मान्यताएँ हर युग में एक समान रही हैं। ये सभी आध्यात्मिक जगत के शाश्वत–सत्य हैं। काल–प्रवाह से इनमें परिवर्तन नहीं आ सकता। परन्तु यह भी सत्य है कि आज के भौतिकवादी संसार में इन आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था कम दृष्टिगत होती है।

सत्येन्दु याज्ञवल्क्य जी के उपन्यास 'पूजा' में नायिका पूजा अध्यात्म दर्शन के सम्बन्ध में दिव्येन्दु से कहती है, **"अध्यात्म से बढ़कर और कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है। और इससे दुरूह कोई रास्ता भी नहीं है।"[15]**

आचार्य शंकर ने भी यही घोषणा की है **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है।"[16]**
ओम शिवराज जी के उपन्यास 'देवसभा' में स्वामी जी कहते हैं कि **"वह ईश्वर सम्पूर्ण जगत् का नियन्ता–सृष्टा, कर्ता–धर्ता, संहर्ता है।"[17]**

अमृतलाल नागर जी के उपन्यास 'मानस का हंस' में तुलसी दास जी कहते हैं कि **"सगुण–निर्गुण दोनों एक ही ब्रह्म के स्वरूप हैं। वे अकथ, अगाध, अनादि और अनूप हैं।"[18]**

निःसंदेह ज्ञान सर्वोपरि है जो विवेकपूर्ण दृष्टि प्रदान करता है और जिसके द्वारा हम आडम्बर से मुक्त होकर वैज्ञानिक दृष्टि से विषय वस्तु को जानने की व समझने की चेष्टा करते हैं। धर्म आस्था है, विश्वास है। अध्यात्म का अर्थ अपने अहम् का विसर्जन और हृदय को व्यापक बनाते हुए लोक मंगल की भावना है। जीव जगत सत्य है, शिव है और इस शिवत्व को प्रतिष्ठित करना मानव ध्येय बने, यह इस जीवन का लक्ष्य हो। यह उद्घोष, प्रत्येक काल के उपन्यासों में न्यूनाधिक मुखरित होता रहा है।

मानव विचारों में उन्नत हो, भाव में उन्नत हो, वृत्तियाँ उन्नत हों और यह मानव समाज उन्नत अवस्था की ओर उन्मुख हो। यह भावनाऐं उपन्यासों के रूप रंग का श्रृंगार करती रही हैं। यहाँ अध्यात्म उन्नत अवस्था का नाम है। जहाँ संकीर्णता से, स्वार्थपरता से मुक्ति का आग्रह और मानव कल्याण की भावना औदार्य के साथ उपस्थित है।

इस शोध पत्र में यह उल्लेखनीय है कि शताधिक वर्षों में फैले हिन्दी उपन्यासों में अध्यात्म उपस्थित रहा है। उसके विषय में दृष्टिकोण में भिन्नता हो सकती है लेकिन दृष्टि में उसकी उपस्थिति अवश्य रही है। कहीं वह देवता का सप्रयत्न प्रयास है तो कहीं वह अनायास ही उपस्थित हो जाता है और उसे देखने की, समझने की, जानने की इच्छा भी उपस्थित हो जाती है, हिन्दी उपन्यासों में अध्यात्म प्रारम्भ से लेकर अब तक है और उसका होना भी आवश्यक है क्योंकि मानव मस्तिष्क में, मानव मन में, मानव भावना में कहीं न कहीं अदृश्य का, अलौकिक का विश्वास गहरे पैठा है। यह अध्यात्म जीवन के उन्नयन की वह सीढ़ी है जो निरन्तर चढ़ते हुए मनुष्य को मनुष्यता के शिखर पर पहुँचा देती है। साहित्य का लक्ष्य भी है मनुष्य को मानवता के निकट लाना, जिससे हम समरसता का समाज निर्मित कर सकें। हिन्दी उपन्यासों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अपनी भूमिका का सार्थक निर्वाह किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. विवेकानन्द स्वामी, आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग, अनुवादक– श्री मधुसूदन, प्रकाशक–स्वामी भास्करेश्वरानन्द, श्री राम कृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर– 1, पृष्ठ संख्या 49–50
2. लाला श्रीनिवासदास, परीक्षा–गुरू, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 38
3. लाला श्रीनिवासदास, परीक्षा–गुरू, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 38
4. लाला श्रीनिवासदास, परीक्षा–गुरू, लोकभारती प्रकाशन पृष्ठ संख्या 38
5. भगवती चरण वर्मा, चित्रलेखा, पृष्ठ संख्या 24
6. भगवती चरण वर्मा, चित्रलेखा पृष्ठ संख्या 36
7. चतुरसेन शास्त्री, हृदय की परख, पृष्ठ संख्या 20
8. भगवती चरण वर्मा, चित्रलेखा, पृष्ठ संख्या 42
9. भगवती चरण वर्मा, चित्रलेखा, पृष्ठ संख्या 42
10. भगवती चरण वर्मा, चित्रलेखा, पृष्ठ संख्या 42–43
11. स्वामी विवेकानन्द जीवन और दर्शन, ह0 माहेश्वरी, सम्पादन– श्री रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन प्रकाशन वर्ष 1967, पृष्ठ संख्या 63
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, प्रकाशन– राजकमल, पृष्ठ संख्या 53
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, प्रकाशन– राजकमल, पृष्ठ संख्या 80
14. इलाचन्द्र जोशी, सन्यासी, पृष्ठ संख्या 101
15. सत्येन्द्र याज्ञवल्क्य, पूजा, पृष्ठ संख्या 73
16. ओम शिवरज, देवसभा, पृष्ठ संख्या 31
17. ओम शिवरज, देवसभा, पृष्ठ संख्या 94
18. अमृत लाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 328